गाँधी युग में अस्पृश्यता की समस्या

डॉ0 अवध किशोर प्रसाद*
विद्यानन्द राम**

महात्मा गाँधी भारत के ही नहीं अपितु विश्व के इतिहास के एक महान व्यक्तित्व हैं। उन्होंने सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह के द्वारा भारत की राजनीतिक घटनाओं का जिस तरह नेतृत्व किया वह विश्व के अनेक नेताओं के लिए अनुकरणीय रहा है सारा विश्व उनके प्रति कृतज्ञ है तथा भारत राष्ट्र भी कृतज्ञ रहेगा। यही एक व्यक्तित्व है, जिनको लेकर विश्व में भारत की पहचान है। महान् वैज्ञानिक आइन्सटीन ने यहाँ तक कहा कि आनेवाली पीढ़ी को विश्वास नहीं होगा कि ऐसा व्यक्तित्व सचमुच हाड़–माँस का रहा होगा।

एक ऐसा व्यक्तित्व जिसके सामने समस्त विश्व नतमस्तक है। हमारे सामने दो तरह की विचारधाराएँ उनके प्रति कृतज्ञ है। सनातन धर्मी हिन्दू उन्हें हिन्दू धर्म के विनाशक मानते रहे और उनके विरूद्ध प्रचार करते रहे । उनके हत्या के पीछे इसी दृष्टिकोण ने काम किया और आज हम पाते हैं कि इन रूढ़िवादी सनातनियों के कारण हत्यारे नाथुराम गोडसे को महिमामण्डित किया जा रहा है।

इस महामानव का दूसरा विरोध अम्बेदकरवारी अनुसूचित जाति के नेताओं का होता रहा जो इन्हें अनुसूचित जाति के विरोधी मानते रहे है। यह अजब की विरोधाभासी आडम्बना है। सनातन धर्मी ब्राह्मण एवं अनुसूचित जाति के नेता दोनों अपना विरोधी मानते रहे हैं।

शोधार्थी स्वयं अनुसूचित जाति का है। इस शोध के द्वारा यह निष्कर्ष निकालना चाहता है कि वस्तुतः महात्मा गाँधी का दृष्टिकोण क्या था? क्या महात्मा गाँधी वस्तुतः अनुसूचित जाति के हितों के विरोधी थे? उन्होंने अनुसूचित जाति के उत्थान के लिए क्या किया ? अस्पृश्यता निवारण के लिए उन्होंने कितने प्रयास किये, उनका विश्लेषण भी बहुत उपयुक्त है।

प्रस्तावना के रूप में सर्वप्रथम मैं अस्पृश्यता की समस्या की विवेचना कर रहा हूँ।

प्राचीन काल में अनेक स्मृतियों, पुराणों, प्रशस्तियों तथा अभिलेखों एवं विदेशी यात्रियों के विवरण आदि के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक स्थिति का प्रकटीकरण होता है।[1]

***(निदेशक) सेवानिवृत प्रो0, एच0आर0 कॉलेज, मैरवा (सिवान)**
****(शोधार्थी), इतिहास विभाग, जयप्रकाश वि0वि0, छपरा**

सर्वे भवन्तु सुखीनः सर्वे भवन्तु निरामयाः, सर्वे भ्रदाणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख प्रात्युनात' तथा 'सर्व भूत हिते रतः' की घोषणा होती रही परन्तु वर्णाश्रम धर्म पर आधारित सामन्ती हिन्दू समाज में अछूतों की छाया के स्पर्शमात्र से ही महापंडितों की सारी पवित्रता नष्ट हो जाती और इसलिए अछूतों को अपने गले में घंटा बाँधकर और थूँकने के लिए हाँडी अपने हाथ में लेकर चलने को बाध्य किया जाता रहा।

ऋग्वेद के पुरूष सूक्त के अनुसार विराट पुरूष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, उदर से वैश्य तथा चरण से शूद्र पैदा हुए। ब्राह्मण ज्ञानतव का प्रतीक, क्षत्रिय शकृत्व का प्रतीक तथा वैश्य धनार्जन पालन–पोषण का प्रतीक तथा शुद्र क्रियातत्व का प्रतीक था जिसका कार्य सेवा सुश्रुषा था।[2] इस चतुवर्ण व्यवस्था में नियामकों ने बड़ी चतुराई से अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए विधि–विधान बनाए। प्रत्येक वर्ण के लिए संस्कारों के अलग–अलग नियम कायम हुए जो कमोबेश अभी तक चला आया है।

हजारों वर्षों से दलित शोषण, वंचन और उत्पीड़न के शिकार रहे हैं। इनकी अनेक निर्योग्यताएँ हैं जो शास्त्रीय हैं और ऐतिहासिक हैं। हाँलाकि इन्हें दूर करने के प्रयास भी समय–समय पर होते रहे हैं किन्तु बुद्ध से लेकर नानक, दयानन्द तक को इस बिन्दु पर पराजय का मुँह देखना पड़ा है।[3]

ब्राह्मणों को राजनैतिक मोर्चे पर ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक धार्मिक और सामाजिक मोर्चों पर भी गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ा था।[4] ब्राह्मणवाद पर आघात करनेवाले कई आन्दोलन खड़े हुए थे। इन आन्दोलनों ने वर्ण, जाति, यज्ञ, तप, कर्मकाण्डों, वेद तथा अन्य धर्मग्रन्थों को अस्वीकार कर दिया जो व्यक्ति और व्यक्ति में दीवार खड़ी करते हैं।

वर्ण व्यवस्था की इस निकृष्ट परम्परा पर हमारे समाज के पुरोहित वर्ग को नाज है। चाहे इसके कारण हजारों वर्षों तक देश गुलाम रहा। अस्पृश्य समाज के लोग इस्लाम धर्मावलम्बी बनें, ईसाई बन जाएँ, किसी को चिन्ता नहीं थी। चिन्ता हुई तो आर्य समाज को। उसने धर्मान्तरण के विरूद्ध शुद्धिकरण आन्दोलन चलाया पर शुद्ध किए किस जाति श्रेणी में रखे जायें इसका समाधान नहीं दे सके। फलतः यह आन्दोलन भी प्रायः विफल रहा।

अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों में एक नई चेतना का स्फुरण हुआ और राजा राम मोहन राय जो बहुभाषाविद् और धर्मों के ज्ञाता थे, पहली बार हिन्दू धर्म की रूढ़ियों और अंधविश्वासों के विरूद्ध आवाज लगाई। फिर केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर,ज्योतिबा फूले,साहूजी महाराज आदि ने इस व्यवस्था को दरकाना शुरू किया।[5]

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने कहा था'' बहुत से महात्मा आए और चले गए लेकिन अछूत ही बने रहे।''[6] इस मध्यकालीन उदारतावादी संतों का सामान्य जनता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

हिन्दुओं की यह मूर्खतापूर्ण प्रवृत्ति बिल्कुल आधुनिक युग तक बनी रही। अछूत उत्पीड़न और अपमान का जन्मजात भागी था लेकिन जैसे ही वह ईसाई या मुस्लिम बन जाता, उसकी सारी जन्मजात बुराईयाँ समाप्त हो जाती थीं, फिर सवर्ण उसे सम्मान देते थे और उससे डरते भी थे। मद्रास के मुख्यमंत्री राजगोपालाचारी ने दिसम्बर 1944 में नागपुर में भाषण देते हुए हिन्दुओं की इसी प्रवृत्ति का हवाला दिया था। वे बोले थे'' आपने अपनी आँखों से देखा है कि अछूतों को गाँवों में कुँए से पानी नहीं भरने दिया जाता लेकिन जैसे ही वह ईसाई बन जाता है वह गाँवों के किसी भी कुँए से पानी भर सकता है। बेचारा हिन्दू अछूत पानी को छू भी नहीं सकता लेकिन जैसे ही वह 'बैप्टाइज्ड' हो जाता है, वह पुलिसवालों की सहायता के बिना ही सारे सामाजिक अधिकारों को पा लेता है। हिन्दू अस्पृश्य मुस्लिम बनते ही स्पृश्य बन जाता है। इसलिए भारत का नीच से नीच अछूत, चाहे वह देश के किसी अंधेरे कोने में रहता हो, ईसाई बनते ही सारे सामाजिक अधिकारों का आनन्द प्राप्त कर सकता है।[7]

राजा राम मोहन राय ने अनेक भाषणों एवं लेखों में जाति–प्रथा की कटु आलोचना की। हिन्दुओं का समाज असंख्य टुकड़ों में बंटा हुआ था और आपसी द्वेष और नफरत के कारण वे राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति के ऊँचे आदर्शों को भूल चुके थे। जाति–प्रथा की आलोचना करते हुए एक जगह उन्होंने लिखा है ''मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दुओं की वर्त्तमान धार्मिक व्यवस्था ऐसी है जिसके कारण वे राजनीति में सफलता प्राप्त नहीं कर सके। जाति–प्रथा के कारण असंख्य जातियाँ एवं उपजातियाँ बनी हुई है। लोग इस तरह बिखरे हुए हैं कि उनमें देशभक्ति नाममात्र की भी पैदा नहीं होती। धार्मिक रीति–रिवाजों की बड़ी भीड़ और शुद्धि के नियमों के मारे लोग कोई भी मुश्किल जिम्मेदारी निभा नहीं सकते। इसलिए कम से कम सामाजिक कल्याण और राजनीतिक सुविधा के लिए अब जरूरी है कि हिन्दू धर्म में कुछ परिवर्तन लाया जाये।[8]

स्वामी विवेकानन्द ने देश के कोने–कोने में असंख्य भाषण दिए और लेख लिखें गाँधी के समान उनका भी साहित्य एवं इतिहास विशाल है। अस्पृश्यता के प्रति उनके विद्रोह को स्पष्ट करने के लिए यहाँ कुछ भाषणों के अंश दिए जाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के भाषणों में बड़ी गहराई और सच्चाई हुआ करती थी। उन्होंने सवर्णों से कहा ''यह मत भूलो कि ये निम्न जातिवाले, अज्ञानी, अनपढ़, मोची और भंगी तुम्हारे ही रक्त और माँस के बने हैं। ये तुम्हारे ही भाई है।'' एक

जगह उन्होंने कहा'' दूसरे देशों के साथ समानता का संबंध कायम करना हमारे देश के लिए तब तक संभव नहीं है जबतक देश की सीमाओं के अन्दर बसनेवाले लोगों में समानता का भाव पैदा नहीं हो जाये। ''एक दूसरी जगह उन्होंने यह बात कही जिसे भारतीय संविधान में भी कुछ अंशों तक ग्रहण किया गया है। यह उनकी उदात्त मानवीयता और क्रान्तिकारी स्वभाव का परिचायक है। उन्होंने कहा'' यदि ब्राह्मणों में संस्कारवश पढ़ने की अधिक क्षमता है तो ब्राह्मणों की शिक्षा के लिए धन का व्यय मत करों। अब सारा धन पेरिया लोगों को शिक्षित करने में लगाओं। गरीबों को दो, उन्हें सब तरह के उपहारों की जरूरत है। यदि ब्राह्मण जन्मजात चालाक चतुर होता है तो वह बिना सहायता भी स्वयं को शिक्षित कर लेगा। लेकिन जो चालाक–चतुर नहीं होता उसके लिए शिक्षा और शिक्षकों का बन्दोबस्त करों। केवल यही न्याय और विवेक है जो मैं समझता हूँ।''[9]

हिन्दुस्तान के दक्षिणी सिरे के कन्याकुमारी अंतरीप से लेकर हिमालय तक विवेकानन्द ने गर्जना की और उन्होंने इस काम में अपने आप को खपा डाला।

हिन्दू धर्म आजकल रसोई के बर्तन में घुस गया है। यह न तो ज्ञान का धर्म है और न विवेक का। यह 'मत छूओवाद' का धर्म है। 'मुझे मत छूओ' 'मुझे मत छूओ' में ही इस धर्म की सम्पूर्ण इतिश्री हो जाती है। क्या 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का उदात्त सिद्धान्त केवल किताबों में लिखे रहने के लिए ही है ? जो लोग दूसरे की साँस से ही अपवित्र हो जाते हैं वे दूसरों को पवित्र कैसे करेंगे ? यह 'मत छूओवाद' एक मानसिक बीमारी है।[10]

महात्मा जयोतिराव फूले (1827–90) महाराष्ट्र के प्रथम क्रान्तिकारी समाज सुधारक माने जाते हैं। स्त्रियों और शूद्रों की शिक्षा का प्रसार करने में उन्होंने जान की बाजी लगा दी। उन्होंने सर्वप्रथम सन् 1848 ई0 में अहमदनगर में अछूत लड़कियों के लिए एक विद्यालय खोला। मित्रों के सहयोग से महात्मा फूले ने सन् 1853 में अछूतों की शिक्षा के लिए एक समिति बनायी जिसके अध्यक्ष श्री सदाशिव गोविन्द बनाये गये। इस समिति ने अछूतों के लिए कई विद्यालयों की नींव डाली।[11] कोल्हापुर के साहू जी महाराज महात्मा फूले को महाराष्ट्र का 'मार्टिन लूथर' कहा करते थे। न्यायाधीश महादेव गोविन्द रानाडे जैसे लोग फूले के सहयोगी एवं प्रशंसक थे।

महात्मा फूले ने सन् 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की। इसके तीन मूल सिद्धान्त थे–

1. ईश्वर एक है। सभी प्राणी बच्चों के समान है।
2. मनुष्य और ईश्वर के बीच किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं है।
3. श्रेष्ठता किसी जाति विशेष में जन्म लेने पर आधारित नहीं होनी चाहिए।[12]

महात्मा फूले 'ईश्वर और मनुष्य के बीच माध्यम बनने वाले' ब्राह्मणों के कठोर विरोधी थे। उनका विचार था कि आर्य ब्राह्मणों ने भारत पर आक्रमण किया और यहाँ पहले से रहने वाले क्षत्रियों को कमजोर बनाने के लिए आर्यों ने उन्हें शूद्रों और अतिशूद्रों में बाँट दिया। वे मनुस्मृति को एक अपवित्र पुस्तक मानते थे।[13]

महात्मा फूले के साथ ही महादेव गोविन्द रानाडे का नाम आता है। रानाडे एवं उनके असंख्य अनुयायियों का मत था कि समाज सुधार के बिना राजनीतिक संघर्ष सफल नहीं हो सकता था और न ही वह होता। इसलिए वे समाज सुधार को प्राथमिकता प्रदान करना चाहते थे।

वीर सावरकर भी महाराष्ट्र के थे। यह उस जेल में 'हिन्दुत्व' नामक पुस्तक लिखी। यह उस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तकों में से एक थीं जून 1924 में उन्होंने अस्पृश्यता एवं जात–पात को समाप्त करने का आन्दोलन चलाया। उन्होने पुरानी अर्थहीन परम्पराओं के विरूद्ध शक्तिशाली निबंध लिखें और निडर होकर अस्पृश्यों का साथ दिया। उन्होंने अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश आन्दोलन को अपना नेतृत्व प्रदान किया।[14]

बड़ौदा के राजा श्री सायाजी राव गयकवाड़ ने बड़ौदा में सन् 1883 में अस्पृश्यों के लिए कई स्कूल खोले। कोई भी हिन्दू शिक्षक इन स्कूलों में पढ़ाने को तैयार नहीं हुआ। इसलिए महाराज को मुस्लिम शिक्षकों की नियुक्ति करनी पड़ी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रारम्भ से ही समाज सुधार के प्रति उपेक्षा का भाव रहा। हिन्दुओं को जातिवाद और अस्पृश्यता के अभिशाप से मुक्त करने की अपेक्षा मुसलमानों को प्रसन्न कर उन्हें कांग्रेस में मिलाने के प्रति कांग्रेसी अधिक सचेष्ट रहे। प्रारम्भ के कांग्रेस अधिवेशनों में कांग्रेसी नेता बार–बार यह स्पष्ट करते रहे कि कांग्रेस एक राजनीतिक सस्था थी समाज सुधार की संस्था नहीं। सन् 1886 में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। अध्यक्ष पद से बोलते हुए दादाभाई नौरोजी ने कहा कि कुछ लोग कांग्रेस पर आरोप लगाते हैं कि कांग्रेस समाज सुधार के कार्य में असफल रही हैं समाज सुधार की आवश्यकताओं के प्रति मैं जागरूक हूँ लेकिन हर काम को करने के लिए उचित समय, परिस्थिति, स्थान और व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। कांग्रेस एक राजनीति संस्था है। कांग्रेस के सदस्यों पर समाज सुधार न करने का आरोप लगाना वैसा ही है जैसे इंग्लैण्ड के हाउस ऑफ़ कॉमन्स के सदस्यों पर यह आरोप लगाया जाय कि वे गणित और धर्मशास्त्र की गूढ समस्याओं का समाधान नहीं करते। इस देश में बहुत तरह के लोग हैं जैसे मुस्लिम, हिन्दू, पारसी, इसाई, सिख, ब्राह्मण आदि। उनमें से प्रत्येक के समाज के लिए किस प्रकार का समाज सुधार चाहिए उसकी चर्चा कांग्रेस के अधिवेशन में नहीं हो सकती। नौरोजी ने आगे सुझाव दिया कि हर प्रकार के सामाजिक वर्ग में समाज–सुधार के लिए एक–एक 'क्लास कांग्रेस' की स्थापना होनी चाहिए।

1885 में बम्बई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के समय ही आन्दोलन के नेताओं ने महसूस कर लिया था कि राष्ट्रीय आन्दोलन केवल राजनीतिक ही नहीं वरन् इसमें राजनीतिक प्रश्नों पर विचार करने के साथ–साथ भारतीय सामाजिक आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले प्रश्नों पर भी विचार किया जाना चाहिए और सभी सामाजिक बुराईयों और कुरूतियों को समाप्त कर हिन्दू समाज को पुर्नजीवन प्रदान करने के लिए सभी भरसक प्रयास किए जाने चाहिए।

हाँलाकि कांग्रेस आन्दोलन के नेताओं में तथा भारतीय शिक्षित विचारधारा के अन्य नेताओं के साथ इस समस्या पर विचार–विमर्श चलता रहा कि क्या कांग्रेस को इस समस्या पर विचार करना चाहिए अथवा क्या सामाजिक प्रश्नों पर चर्चा करने के लिए अलग से समिति का गठन कर लेना चाहिए। अन्त में दीवान बहादुर, आर0 रघुनाथ राव, महादेव गोविन्द रानाडे, नरेन्द्रनाथ सेन तथा जानकी नाथ घोषाल तथा अन्य विद्वानों द्वारा गहन विचार–विमर्श के बाद इस निर्णय पर पहुँचे कि इण्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेन्स नाम से अलग से एक संस्था बनाई जानी चाहिए जो भारतीय सामाजिक अर्थव्यवस्था संबंधी विषयों पर विचार करें। इण्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेन्स का प्रथम अधिवेशन दिसम्बर 1887 में मद्रास में ही हुआ और उसे भी इस कान्फ्रेन्स की जन्मस्थली होने का गौरव प्राप्त हुआ।

सोशल रिफॉर्म पार्टी द्वारा सामाजिक बुराईयों से त्रस्त हिन्दू समाज की अनेक सामाजिक कुरीतियों पर विचार करने के लिए अलग से एक संगठन बनाया गया। वे कांग्रेस की इस बात से बहुत संतुष्ट नहीं थें कि कांग्रेस ने समाजिक समस्याओं से बिल्कुल हाथ खींच लिया हैं। इनमें से कुछ लोग तो इसको एक मुद्दा बनाने के लिए आतुर थें कि क्या सामाजिक सुधार राजनीतिक सुधारों से पहले अवश्य होने चाहिए और उन्होंने इस आशय का फैसला किए जाने हेतु दबाव बनाया। इस विचार के समर्थक उनके बहुत से मित्र थे। उन समर्थकों में भारत सरकार भी थी। वायसराय की एक्जीक्यूटिव काउन्सिल के सदस्य सर ऑकलैण्ड कालविन ने बहुत ही साफ और जोरदार तरीके से स्पष्ट किया कि भारतीयों को प्राथमिकता के तौर पर सामाजिक सुधार पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए बजाय इसके कि वे अंग्रेजों को यह कांग्रेस अध्यक्षों के भाषणों से समाज–सुधार के मुद्दों को अब सरलता से समझा जा सकता है। ये भाषण सामाजिक बुराईयों को दूर करने की समस्या की कांग्रेस द्वारा अपने को अलग करने के विरोध में सोशल रिफॉर्म पार्टी द्वारा की गयी आलोचना का उत्तर दें। अब हम दूसरे प्रश्न के उत्तर पर आते हैं कि सन् 1895 के बाद किसी भी कांग्रेस अध्यक्ष ने अपने अभिभाषण में सामाजिक सुधार का जिक्र क्यों नहीं किया ? बात यह है कि वस्तुत : सन् 1895 से पूर्व कांग्रेसियों में सामाजिक सुधार बनाम राजनीतिक सुधार के मुद्दों पर दो

विचार धाराएँ थी। एक विचारधारा के समर्थक थें दादाभाई नौरोजी, बदरूद्दीन तैयब और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी। दूसरी विचारधारा थी डब्ल्यू0सी0 बनर्जी की। पहली विचारधारा के समर्थक सामाजिक सुधार की आवश्यकता को मानने के बावजूद कांग्रेस अधिवेशन को इन बिन्दुओं पर विचार करने हेतु उपयुक्त नहीं मानते थें। दूसरी विचारधारा सामाजिक सुधार की आवश्यकता समझती थी और उसने इस मत को चुनौती दी कि सामाजिक सुधार के बिना राजनीतिक सुधार नहीं लाया जा सकता। यद्यपि कांग्रेस के अन्दर की ये दोनों विचारधाराएँ एक–दूसरे के बिल्कुल विपरीत थीं, फिर भी सन् 1895 तक उनमें आपसी प्रतिरोध विकसित नहीं हुआ था। पहली विचारधारा का प्रभुत्व था और इसके परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा सोशल कान्फ्रेन्स दो समानान्तर संगठनों के रूप में कार्य करते थें और अपने–अपने उद्देश्यों व लक्ष्यों की प्राप्ति पर ध्यान देते थें। दोनों के बीच इतना अधिक सहयोग तथा सद्भाव था कि राष्ट्रीय कांग्रेस तथा सोशल कान्फ्रेन्स के वार्षिक अधिवेशन एक–दूसरे के तुरन्त बाद ही उसी पंडाल में किए जाते थे और जो लोग कांग्रेस अधिवेशन के लिए आते थे उनमें से अधिकतर सोशल कान्फ्रेन्स में भी उपस्थित होते थे। परन्तु सोशल कान्फ्रेन्स उन कांग्रेसजनों की आँख की किरकिरी थी जो सामाजिक सुधार विरोधी मत के थे। यह वर्ग कांग्रेस के उस प्रभावशाली वर्ग के प्रति उद्विग्न हो रहा था जो सोशल कांन्फ्रेन्स पर मेहरबान थें और उसे अपना अधिवेशन करने के लिए कांग्रेस पंडाल का उपयोग करने जैसी सुविधाएँ देते थे।

पूना में सन् 1895 में कांग्रेस की बैठक में सामाजिक सुधार विरोधी गुट विद्रोह कर बैठा तथा उसने धमकी दी कि यदि कांग्रेस ने सोशल कान्फ्रेन्स को अपने पंडाल का उपयोग करने की अनुमति दी तो पंडाल फूँक दिया जाएगा। सोशल कान्फ्रेन्स के उन विरोधियों का नेतृत्व कोई और व्यक्ति नहीं अपितु सामाजिक अनुदारवादी और राजनीतिक उग्रवादी दिवंगत बाल गंगाधर तिलक ही कर रहें थे जिन्होंने''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार हैं'' का नारा दिया था जो अब कांग्रेस का मूलभूत सिद्धान्त माना जाने लगा। कांग्रेस में सोशल रिफॉर्म पार्टी समर्थक अपने विरोधियों से संघर्ष करने के लिए तैयार नहीं थें। इसलिए विद्रोह पूर्ण रूप से सफल रहा। विद्रोह का एक प्रभाव यह पड़ा कि उससे यह भी निश्चय हो गया कि कांग्रेस कोई भी सामाजिक सुधार चाहें वह जितना ही आवश्यक क्यों न हो उस पर कोई विचार नहीं करेगी। यह इस बात का स्पष्टीकरण है कि सन् 1895 के बाद किसी भी कांग्रेस अध्यक्ष ने समाज सुधार की समस्या का अपने अध्यक्षीय भाषण में कभी उल्लेख क्यों नहीं किया। सन् 1895 में ही कांग्रेस अपने कार्य कारण से पूर्णतया राजनीतिक दल बन गयी और अब उसकी सामाजिक बुराईयों को मिटाने अथवा कम करने के प्रति कोई रूचि और कोई चिन्ता नहीं थी।

अस्पृश्यता की समस्या का उपरोक्त ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विवेचना के बाद प्रथम अध्याय में महात्मा गाँधी को प्रभावित करने वाली घटनाओं को अध्ययन करेंगे। महात्मा ने अपन आत्मा का शीर्षक ''सत्य के मेरे प्रयोग'' {Experiment With Truth} दिया हैं।

अत : अछूतोद्धार या अस्पृश्यता के सम्बन्ध में आमतौर पर महात्मा गाँधी के दृष्टिकोण बदलते रहें हैं। अत : 1930 तक महात्मा गाँधी का विचारधारा कुछ दूसरी प्रतीत होती हैं एंव गोलमेज सम्मेलन, साम्प्रदायिक पंचाट तथा पूना पैक्ट के बाद उनके विचारधारा में अधिक क्रियाशीलता पायी जाती है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची

1. आर0 एस0 शर्मा, 'शूद्रों का प्राचीन इतिहास'
2. लाला ज्ञानचन्द्र आर्य, 'वर्ण व्यवस्था का वैदिक स्वरूप,' पृ0 21
3. डॉ0 रामगोपाल सिंह, 'भारतीय दलित समस्याएँ एवं समाधान,' मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2007, प्रस्तावना , 1
4. उपरोक्त, पृ0 38–39
5. डब्ल्यू0 एन0 कुबेर, भीमराव अम्बेडकर
6. स्वामी सुन्दरानन्द, हिन्दूइज्म एण्ड अनटचेवीलिटी,' पृ0 68
7. प्यारे लाल, 'महात्मा गाँधी,' दि अर्ली फेज, पृ0 71
8. उपरोक्त पृ0 103
9. द्वारका प्रसाद गुप्ता, पृ0 27
10. डब्ल्यू0 एन0 कुबेर, पृ0 17
11. चन्द्र भारिल, सोशल एण्ड पालिटिकल आईडियाज ऑफ अम्बेडकर, पृ0 30
12. डब्ल्यू0 एन0 कुबेर, पृ0 17
13. द्वारका प्रसाद गुप्ता, पृ0 30
14. ए0 एम0 जैबी, कांग्रेस प्रेसिडेंसल एड्रेसेज, पृ0 29
15. डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर, 'कांग्रेस और गाँधी ने अछुतों के लिए क्या किया ?', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ0 30–32